RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper
Available online at: www.rhimrj.com

भारत में ग्राम स्वशासन की अवधारणा का विकास : प्राचीन भारत

डॉ. शक्ति सिंह शेखावत
व्याख्याता, (राजनीति विज्ञान)
राजकीय महाविद्यालय, जयपुर,

ग्राम स्वशासन के यंत्र के रूप में पंचायती राज संस्थाएँ भारत की विलक्षण विशेषता है। शासन का संगठन एवं स्वरूप जो भी रहा हो भारत में पंचायती राज संस्थाएँ अस्तित्व में रही है।

चार्ल्स मैटकॉफ के अनुसार - "जहाँ कुछ भी नही टिकता, वहाँ वे टिके रहते है। राजवंश एक के बाद एक धरालुंठित होते रहे है, एक क्रांति के बाद दूसरी क्रांति आती है। हिन्दु, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख व अंग्रेज सभी बारी-बारी से अपना स्थायित्व स्थापित करते है, किन्तु ग्राम समाज ज्यों के त्यों बने रहते हैं संकटकाल में वे अपने शस्त्र सज्जित करते है तथा अपनी किलेबन्दी करते हैं। उन ग्रामीण समाजों की जिनमें से प्रत्येक अपने में एक छोटा सा राज्य था, यह एकता ही वह चीज थी जिसने भारत की जनता को उन सभी क्रांति और परिवर्तनों के बीच सुरक्षित रखा जिनका समय-समय पर उसे शिकार होना पड़ा था। उसकी यह एकता बहुत अंशो में उनके सुख तथा उनकी स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता का कारण रही है।[१]

प्राचीन काल में पंचायती राज

पंचायत अर्थात पंच - आयत जो कि पाँच व्यक्तियों का समूह है जो कि राज्य जैसी संस्था के विकसित होने से पूर्व गाँवों में विवादों का निपटारा, सार्वजनिक महत्व के स्थानो - तालाब, धर्मशाला आदि का निर्माण व देखरेख इत्यादि महत्वपूर्ण कार्य किया करते थे - अदितिः पन्च जनाः। इसके सदस्य पंच कहलाये। निष्पक्ष न्याय व्यवस्था के कारण पंच परमेश्वर की अवधारणा विकसित हुई तथा पंचायत के निर्णय को ईश्वरीय निर्णय के समान स्थान मिला। आम लोगों का पंचायत में भाग लेना और अपनी राय व्यक्त करना इन पंचायतों की शाश्वत जीवनी शक्ति है।

वैदिक काल में इस प्रकार की सभाओं एवं समितियों की कार्यप्रणाली को शुद्ध एवं निष्पक्ष रखने पर विशेष बल दिया जाता था - समानो मन्त्रः समिति समानी, समानं मनः सह चित्त मेषाम्।[२]

वैदिक काल में ग्राम पंचायत (सभा) तथा उसके उर्ध्वगामी संगठन सुव्यवस्थित रूप से कार्यशील थे, जैसा कि अथर्ववेद के निम्न मन्त्र से ज्ञात होता है -

सा उद्क्रायत सा सभायां न्यक्रायत।
सा उद्क्रायत् सा समितौ न्याक्रायत।
सा उदक्रायत् सा आमन्त्रणेन्यक्रामत।।

अर्थात् जन शक्ति उत्क्रान्त होकर ग्राम सभा में परिणत हो गई। ग्राम सभायें छोटी इकाई थी व एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं थी, इस कारण जन-शक्ति और उत्क्रान्त होकर समिति में परिणत हुई। इस समिति का स्वरूप विस्तृत था, अतः इसके द्वारा संकल्पित विचारों के क्रियान्वयन के लिए एक प्रतिनिधि सभा (आमंत्रण समिति) के गठन की आवश्यकता अनुभव की गई, परिणामस्वरूप इस प्रकार जनशक्ति का उत्क्रान्त स्वरूप आमंत्रण समिति के रूप में सामने आया।

लोग अपने गांवों, पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से वनों, ग्राम सभा, समिति, संग्राम स्थल एवं मातृभूमि की रक्षा एवं संवर्द्धन की दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे।

ये ग्रामा यदरण्यं या सभा अधिभूम्याम्।
ये संग्रायाः समितयस्तेषु वास्वदे मते।।[३]

उत्तर वैदिक काल में ग्राम के मुखिया को ग्रामणी कहा जाता था।

---

१. भारत में पंचायती राज - डॉ. आर.पी. जोशी, डॉ. रूपा मंगलानी, राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ संख्या ७, २०१०
२. ऋग्वेद, १०/१११/३
३. राजस्थान में पंचायत कानून तिवाड़ी, चौधरी एवं चौधरी - जेल्या प्रकाशन पृष्ठ २

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved ISSN: 2349-7637 (Online)

ऋग्वैदिक काल में सभा समिति एवं विद्थ जैसी संस्थाएं थी जिसमें सभा व समिति प्रजा द्वारा निर्वाचित परिषदें थी जो शासक पर नियंत्रण रखने का कार्य करती थी। विदथ स्थानीय कार्यों का सम्पादन करने वाली संस्था थी।

वाल्मीकि रामायण में पौर, जन-पद, श्रेष्ठ (प्रधान एवं वृद्धजन) नैगय (नागरिक) एवं गण इत्यादि संस्थाओं की कार्यप्रणाली के बारें में जानकारी दी गई है-

पौर जनपदश्रेष्ठाः नैगमाश्च गणैः सह।

रामायण काल में ग्राम प्रमुख को ग्रामणी अथवा महत्तर के नाम से जाना जाता था। कालान्तर में उसे ग्रामिक कहा जाने लगा।

महाभारत काल में ग्राम सभा से लेकर जनपदों तक की सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित संरचना विद्यमान थी -

"तत्र पुण्या जनपदाश्चत्थारों लोक सभ्यता।"[४]

मौर्ययुग में शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी व ग्रामिक ग्राम का मुखिया था जिसका चयन ग्राम कि जनता द्वारा होता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा कि -

क्षेत्र विवादं सायन्त ग्राम - वृद्धा वुर्युः।
तेषां द्वैधीभयतो बहवः शुचयो अनुयता वाततीनि - यच्छेषु।
मध्यं वा गृहणीयुः।।

अर्थात स्थानीय विवादों का निर्णयं ग्राम वृद्धों एवं सामन्तों द्वारा किया जाता था। यदि ग्राम वृद्ध या सामन्त किसी विषय पर निर्णय लेने में मतभेद रखते थे तो स्थानीय जनता की अनुमति से वहाँ के धार्मिक पुरूष उस विषय पर निर्णय देते थे अथवा मध्यस्थ को नियत कराकर उससे निर्णय कराया जाता था।

यदि किसी विवाद में दो या दों से अधिक ग्रामों के व्यक्ति सम्बद्ध होते थे, तो ऐसे विवादों का निर्णय ऐसे सभी ग्रामों के मुखिया एवं सामन्त मिलकर करते थे। एक ग्राम के मुखिया को ग्राम वृद्ध कहा जाता था, जबकि पाँच गाँवों के मुखिया को पंचग्रामी तथा दस गाँवों के मुखिया को दशग्रामी कहा जाता था-

सीमा विवादं ग्रामयोस्यतोः सामन्ताः।
पंचग्रामी, दशग्रामीव सेतुभिः स्थापयेत् कृत्रिमैर्वाकुयात्।[५]

जातक कथाओं में बौद्ध काल में सुस्थापित पंचायत तंत्र का वर्णन मिलता है। इस काल में ग्राम की सभा के प्रधान को ग्राम भोजक कहा जाता था, जिसका निर्वाचन ग्रामवासियों द्वारा किया जाता था। ग्राम सभा में ग्राम वृद्ध के रूप में गांव के मुखिया लोग भाग लेते थे, परन्तु उनके अलावा गांव के अधिकांश व्यक्ति भी सम्मिलित हुआ करते थे।

यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के लेखों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन मौर्य-शासन व्यवस्था ग्राम सभा या ग्राम संघ होते थे, जो अपराधियों को दण्ड देते थे।[६]

गुप्तकालीन भारत में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी जिसका मुखिया 'ग्रामिक' था। गुप्तकालीन अभिलेखों में 'ग्राम सभा' को 'ग्राम जनपद' एवं 'पंचमण्डली' कहा गया है जो महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती थी। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में सातवाहन शासन काल में नगरों व ग्रामों में स्थानीय राजनीतिक संस्थाएँ थी। दक्षिण भारत में ही चोल प्रशासन के काल में प्रशासन प्रणाली की अद्वितीय विशेषता ग्राम स्वायत्तता का विकास थी। ग्राम व नगर परिषदें आरम्भिक परिषदें थी। 'नाडु' परिषदें प्रतिनिधि परिषदें थी। ग्रामवासियों द्वारा विशिष्ट पद्धति से चयनित ग्राम परिषदों को ग्राम व्यवस्था का सम्पूर्ण कार्यभार सौंपा जाता था।[७]

मध्यकाल में पंचायतीराज

---

४. महाभारत भीष्यवर्ष १३/३५-३६
५. कौटिल्य अर्थशास्त्र ३/९/१
६. राजस्थान में पंचायत कानून - तिवाड़ी चौधरी एवं चौधरी - ऋचा प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ - ३
७. भारत में पंचायतीराज - जोशी, मंगलानी हिन्दी ग्रंथ - पृष्ठ - ९

दिल्ली सल्तनत काल में राज्य की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी। ग्राम का प्रबन्धन लम्बरदारों, पटवारियों, व चौकीदारों द्वारा किया जाता था। गाँवों को अपने प्रबंधन के मामलें में पर्याप्त स्वायत्तत्ता प्राप्त थी। मुगलकालीन भारत में शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम के शासन का प्रबन्धन पंचायत द्वारा किया जाता था। शासन के संचालन हेतु ग्रामीण स्तर पर तीन महत्वपूर्ण अधिकारी - मुकद्दम, पटवारी व चौधरी थी। मुकद्दम, शासन की देखरेख, पटवारी, लगान वसूली का कार्य व चौधरी, पंच की सहायता से विवादों का निस्तारण करता था। शासन में पंचायत के महत्व को स्वीकारा जाता था। अकबर के शासनकाल में पंचायतीराज संस्थाओं को बहुत हद तक नैतिक एवं प्रशासनिक सहयोग प्राप्त हुआ।

आधुनिक काल में पंचायतीराज

आधुनिक काल को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है ब्रिटिश भारत एवं स्वतन्त्रता के पश्चात भारत।

१६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही ब्रिटिश सरकार के नीति पत्रों में स्थानीय स्वशासन की चर्चा होने लगी थी। वस्तुतः तत्कालीन परिस्थितियों में ब्रिटिश साम्राज्य के लिए यह आवश्यक भी था कि स्थानीय सुविधाओं के दायित्व और उनको संचालित करने हेतु वांछित आर्थिक भार से सरकार मुक्त हो जाये। दूसरे, इतने विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक एवं आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु आधारभूत ढांचे का होना आवश्यक था। वायसराय परिषद के सदस्य सैमुअल लेइंग ने १८६१-६२ में स्पष्ट कहा था कि स्थानीय स्वशासन के विचार को क्रियान्वित करने से न केवल नगरपालिकाओं में वृद्धि होगी, वरन् स्वावलम्बिता एवं मार्गदर्शन जैसी आधारभूत भावनाओं का विकास होगा जो किसी भी राष्ट्र की सुदृढ़ता के लिए वांछनीय है। लेइंग ने अपने कथन के समर्थन में यह भी स्पष्ट किया कि ग्राम परिषदें एवं पंचायते भारत के लिए कोई नई बात नहीं है। एंग्लो सैक्सन समुदायों की तरह भारतीय भी इसके अनुभवी है।

१४ दिसम्बर १८७० को लार्डमयों का प्रस्ताव (सं. ३३३४) आया, जिसमें स्पष्टतः कहा गया था कि इतने बड़े साम्राज्य की सड़कों का निर्माण एवं संधारण राजकीय कोष के बूते के बाहर की बात है। यही नहीं शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की भी स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों द्वारा ही व्यवस्था की जानी चाहिए। मेयों के प्रस्ताव को अविलम्ब मूर्त रूप दिया गया। अगले वर्ष (१८७१) ही भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को अनेक शक्तियां विकेन्द्रित की तथा बम्बई, बंगाल, पंजाब तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांतों में ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं के गठन संबंधी अधिनियम भी बनाये गये।

ब्रिटिश काल में लार्ड रिपन की उदारवादी नीतियों से स्थानीय स्वशासन के विचार को सर्वाधिक बल मिला। १८८२ में पारित स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में उनका प्रस्ताव वस्तुतः इस दिशा में एक मील का पत्थर साबित हुआ। कालान्तर में उनके प्रस्ताव के क्रियान्वयन के फलस्वरूप ही जिला स्तर पर जिला बोर्ड गठित किये गये। उससे नीचे के स्तर पर भी तद्नुसार संगठन बने। तत्पश्चात् लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों ने स्थानीय स्वशासन को कमजोर किया। १९०७-०८ में स्थानीय स्वशासन की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अध्ययन करने हेतु रॉयल कमीशन का गठन किया गया। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट (१९०९) में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए पंचायतों के महत्व को उजागर किया। वस्तुतः संवैधानिक महत्व के किसी लेख में पंचायत शब्द का प्रयोग पहली बार हुआ था। भारत सरकार के अधिनियम १९१९ में स्थानीय स्वशासन विषय को प्रांतीय सरकारों को स्थानांतरित किया गया, जिसके क्रियान्वयन का पूर्ण दायित्व निर्वाचित भारतीय मंत्रियों को सौपा गया। बंगाल (१९१९), बिहार (१९२०), बम्बई (१९२०), मध्यप्रदेश (१९२०), बरार (१९२०), मद्रास (१९२०), संयुक्त प्रांत (१९२०), पंजाब (१९२२) तथा आसाम (१९२५) में ग्राम पंचायतों की स्थापना हेतु अधिनियम पारित किये गये।[५]

१९३५ के भारत सरकार अधिनियम में प्रान्तीय स्वायत्तता दी गई जिसके फलस्वरूप पंचायतों के कार्यक्षेत्र का भी विस्तार हुआ। उक्त आधार पर हम कह सकते है कि स्थानीय शासन इकाईयों को निर्वाचित स्वरूप, करारोपण की शक्तियाँ व प्रजातंत्र की पाठशाला के रूप में विकसित करने का श्रेय ब्रिटिश शासन को दिया जा सकता है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रस्ताव :

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन (१९०९) में एक प्रस्ताव पारित कर भारत सरकार से यह आग्रह किया गया कि ग्राम पंचायत से लेकर ऊपर तक स्थानीय स्वायत्तशासी अध्यक्ष एवं पंचों के निर्वाचन की व्यवस्था की जाये तथा इन निकायों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाये, इस हेतु संविधान में संयुक्त प्रावधान करने की आवश्यकता प्रतिपादित की। डॉ. भीमराव अम्बेडकर सत्ता के गांवों तक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि ग्राम स्थानीयवाद, अज्ञान एवं संकुचित दृष्टिकोण आदि बातों के रहते अभी सत्ता में

५. भारत में पंचायतीराज - निरंजन मिश्र, परिबोध जयपुर, पृष्ठ १४-१५

भागीदारी निभाने में सक्षम नहीं हैं। डी.के. संथानम ने भी ग्राम पंचायतों के गठन और स्वायत्त शासन को अपेक्षित अधिकार देने पर बल दिया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भी चाहते थे कि 'ग्राम स्वराज' की व्यवस्था को ही संविधान का आधार बनाया जावें।

अतः गांधी जी की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए संविधान के प्रारूप में, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद ४० का प्रावधान किया जिसके अनुसार "राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।"[९]

भारतीय संविधान की अनुसूची ७ के तहत राज्य सूची में स्थानीय सरकार के रूप में पंचायती राज का प्रावधान किया गया। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर भारत सरकार ने समय-समय पर पंचायतीराज व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लिये है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम – पंचायतीराज का अग्रदूत –

स्वतंत्रता के पश्चात विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं ग्राम स्वराज्य की महत्ता को स्वीकारा गया। तात्कालिक सामुदायिक विकास मंत्री एस.के.डे एवं पण्डित नेहरू की पहल से २ अक्टूबर १९५२ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किया गया। यह कार्यक्रम ग्रामीण सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए रूपायित किया गया था। इस कार्यक्रम का उद्देश्य आर्थिक नियोजन व सामाजिक पुनरूद्धार की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति देश की ग्रामीण जनता में सक्रिय रूचि पैदा करता था किंतु यह कार्यक्रम सरकारी तंत्र और ग्रामीण जनता के बीच की दूरी को कम करने के अपने महत्वपूर्ण उद्देश्य में विफल रहा।[१०]

बलवंतराय मेहता समिति का प्रतिवेदन

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन एवं स्थानीय स्वशासन में सुधार के लिए भारत सरकार ने १६ जनवरी १९५७ को बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का कारण जनसहभागिता का अभाव माना तथा लोगों की सहभागिता हेतु एक त्रि-स्तरीय स्थानीय शासन की प्रणाली दी जिसमें ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति व जिला स्तर पर जिला परिषद बने जो कि निर्वाचित हो तथा इन संस्थाओं को भरपूर वित्तीय सहायता दी जाये। जिससे की विकास का नियोजन एवं क्रियान्वयन हो सके।

अप्रेल, १९५८ में मेहता समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया। सर्वप्रथम राजस्थान विधानसभा ने सितम्बर १९५९ में पंचायती राज अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर २ अक्टूबर १९५९ को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायतीराज व्यवस्था का पण्डित नेहरू ने विधिवत उद्घोष किया गया। परम्परागत स्वरूप से भिन्न पचांयतीराज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के अभियन्त्र के रूप में गठित किया गया।[११]

अशोक मेहता समिति

अशोक मेहता की अध्यक्षता में १३ सदस्यीय समिति का गठन वर्ष १९७७ में किया गया तथा १९७८ में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें पंचायतीराज संस्थाओं को द्विस्तरीय बनाने, विकेन्द्रीकरण का प्रथम बिन्दु जिला को बनाने तथा दलगत राजनीति विहिन बनाने, ग्राम पंचायतों की जगह मंडल पंचायतों का गठन जिसमें १५०००-२०००० तक की जनसंख्या सम्मिलित होनी चाहिए का सुझाव दिया।

मुख्यमंत्री सम्मेलन (१९७९)

अशोक मेहता समिति की सिफारिशों पर विचार विमर्श करने के पश्चात मुख्यमंत्री सम्मेलन में द्वि स्तरीय प्रणाली को अस्वीकार किया गया।

जी.वी.के. राव समिति

---

९. निरंजन मिश्र – पृष्ठ १७
१०. फालानी, पृष्ठ – १३
११. मंगलानी, पृष्ठ – १३

२५ मार्च, १९८५ को श्री जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में समिति गठित की गई तथा २४ सितम्बर १९८५ को समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस समिति को कार्ड (कमेटी टू रिव्यू द एक्जीटिंग एडमिनिस्ट्रेटिव अरेंजमेन्ट्स फॉर रूरल डवलपमेंट) के नाम से भी जाना जाता है। इस समिति की मुख्य सिफारिशों में जनसाधारण की सक्रिय भागीदारी हो, जिला परिषद विकास की प्रमुख निकाय हो, जिला स्तरीय एवं निम्न स्तर की संस्थाओं को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने, क्रियान्विति करने तथा देखरेख करने का कार्य सौंपा जाना चाहिए, जिला योजना बने, विकास अधिकारी का दर्जा बढ़ाया जाय, विकास खण्ड सामान्यतया १ लाख जनसंख्या पर, किन्तु पहाड़ी एवं समस्याग्रस्त स्थानों में ५० हजार की संख्या पर बनाया जाना चाहिए।

एल.एम. सिंघवी समिति

वर्ष १९८६ में भी एल.एम. सिंघवी की अध्यक्षता में गठित समिति ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसमें ग्राम सभा को सशक्त करने, पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिये जाने, ग्राम समूह के लिये न्याय पंचायत की स्थापना तथा निर्वाचन में राजनीतिक दलों की भूमिका के बारे में समिति ने राज्य सरकार को व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से सभी दलों के परामर्श से निर्धारित करने पर सुझाव दिये।

पी.के. थुंगन कमेटी

श्री पी.के. थुंगन की अध्यक्षता में १९८८ में गठित की गई, इस समिति ने पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव ५ वर्ष में सुनिश्चित करने का संवैधानिक प्रावधान तथा उन्हें संवैधानिक मान्यता देने का सुझाव दिया।

सरकारिया आयोग

१९८८ में केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर गठित सरकारिया अयोग ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिये जाने के सुझाव का समर्थन नहीं किया।

६४वां संविधान संशोधन विधेयक

भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने पंचायती राज संस्थाओं के सम्यक् विकास एवं एकरूपता की दृष्टि से १५ मई, १९८९ को लोकसभा में विधेयक प्रस्तुत किया जो लोकसभा में १० अगस्त १९८९ को पारित हो गया लेकिन राज्य सभा में पारित नहीं हो सका, इस विधेयक के प्रमुख प्रावधानों को समाहित करते हुए ७३वां संविधान संशोधन विधेयक लाया गया।

७३वां संविधान संशोधन विधेयक

७३वां संविधान संशोधन अधिनियम, २२ दिसम्बर १९९२ को लोकसभा तथा २३ दिसम्बर १९९२ को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया। तत्पश्चात् राज्य विधान मण्डलों के अनुमोदन के उपरान्त २४ अप्रेल, १९९३ से यह अधिनियम लागू हुआ। जिसकी निम्नलिखित विशेषताएँ है :-

१. इस अधिनियम के लागू होने से १ वर्ष के भीतर सभी राज्यों को अपने अधिनियमों में इसके प्रावधानों के अनुरूप संशोधन करना, अनिवार्य होगा। जिन राज्यों में ऐसा कोई अधिनियम लागू नहीं हैं, उन्हें इसके अनुसार अपने राज्य में नये सिरे से पंचायती राज अधिनियम लागू करना होगा।
२. ग्राम सभा - ग्राम में ग्राम सभा को पंचायत व्यवस्था में महत्वपूर्ण दर्जा दिया गया है, जो राज्य विधानमण्डल द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग एवं कर्तव्यों का पालन करेगी।
३. त्रिस्तरीय व्यवस्था - सभी राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं में त्रिस्तरीय संगठनात्मक संरचना सम्बन्धी प्रावधान किये गये।
४. प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली - सभी स्तरों पर पंचायतों के सभी सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से होगा, परन्तु खण्ड एवं जिला स्तरीय संस्थाओं में अध्यक्षों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से हो या अप्रत्यक्ष रूप से, इस सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार सम्बद्ध राज्य की सरकारों को दिया गया है।
५. आरक्षण - पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण दिये जाने का प्रावधान किया गया। इसी प्रकार महिलाओं के लिए एक-तिहाई स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था की गई। अध्यक्षों के मामलें में भी इसी प्रकार के आरक्षण किये जाने की राज्य सरकारों को स्वंतत्रता दी गई।
६. कार्यकाल - पंचायतीराज संस्थाओं का निर्वाचन ५ वर्ष के लिए किया जायेगा। यदि इससे पूर्व किसी संस्था को भंग कर दिया जाये तो ६ माह की अवधि में उसका चुनाव करना अनिवार्य होगा।

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)

७. करारोपण - यदि राज्य विधानमण्डल चाहे तो पंचायतों को उपयुक्त कर लगाने, वसूल करने तथा व्यय करने का अधिकार दे सकते है। राज्य सरकार राज्य के संचति कोष से पंचायती राज संस्थाओं को अनुदान भी दे सकती है।

८. वित्त आयोग का गठन - पंचायतों को वित्तीय स्थिति की समीक्षा तथा राज्य और स्थानीय निकायों में धन के वितरण के बारे में सिफारिशें देने हेतु राज्य सरकार पर प्रत्येक ५ वर्ष में वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था की गई है।

९. राज्य सरकारों का कतिपय क्षेत्रों का कार्य सौंपनें का अधिकार - संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में जो विषय गिनाये गये है वे राज्य सरकार की इच्छा पर पंचायतीराज संस्थाओं को सौपें जा सकते है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारें उन्हें आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय को अग्रसर करने संबंधी योजनाओं का दायित्व भी सौप सकती है।

१०. राज्य विधान मण्डलों को मध्यम एवं जिला स्तर की पंचायत राज संस्थाओ में उनके कार्यक्षेत्र के निर्वाचित सांसदों, विधानसभा तथा विधान परिषद् के सदस्यों को पदेन रूप से लेने सम्बन्धी स्वैच्छिक अधिकार दिया गया है।[१२]

ग्राम स्वशासन अवधारणा का ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में ग्राम स्वायत्त थे जो कालान्तर में मध्ययुग में भी उनकी स्वायत्तता बनी रही लेकिन ब्रिटिश काल में ग्राम स्वायत्तता समाप्त प्राय हो गई जिसे लार्ड रिपन ने पुनः स्थापित किया तथा स्वतंत्रता के पश्चात पंचायतीराज के रूप में २ अक्टूबर १९५९ को अस्तित्व में आयी ग्राम स्वायत्तता को ७३वें संविधान संशोधन ने संवैधानिक दर्जा प्राप्त किया।

हालांकि स्वतंत्रता के पश्चात ग्राम स्वशासन के दर्शन को लागू करने के लिए पंचायतीराज व्यवस्था को सशक्त बनाने का प्रयास किया गया लेकिन पंचायती व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण होने के कारण पंचायती राज की संस्थाएं निशक्त है यदि संविधान की ७वीं अनुसूची में शक्तियों के बंटवारे की एक इकाई पंचायती सूची को जोड़ा जाए तो पंचायतों को संवैधानिक शक्ति प्राप्त हो जाएगी साथ ही संघ सरकार के करों में बंटवारें में भी पंचायतों का एक निश्चित हिस्सा तय हो जिससे पंचायतीराज संस्थाओं को वित्तीय रूप से शक्तिशाली बनाया जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. जोशी, डॉ. आर.पी., मंगलानी, डॉ. रूपा, "भारत में पंचायतीराज" राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर २०१०, पृष्ठ संख्या ७
२. ऋग्वेद, १०/१११/३
३. अथर्ववेद १२/१/५६
४. महाभारत भीष्मपर्व १३/३५-३९
५. कौटिल्य, अर्थशास्त्र ३/९/१
६. तिवाड़ी, चौधरी एवं चौधरी, "राजस्थान में पंचायत कानून, ऋचा प्रकाशन, जयपुर" पृश्ठ संख्या ३
७. जोगी, डॉ. आर.पी., मंगलानी डॉ. रूपा "भारत में पंचायतीराज, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, २०१०" पृष्ठ संख्या ६
८. मिश्र निरंजन, "भारत में पंचायती राज", परिबोध, जयपुर, पृष्ठ संख्या १४-१५
९. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या १७
१०. जोशी, डॉ. आर.पी., मंगलानी डॉ. रूपा "भारत में पंचायती राज", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, २०१० पृष्ठ संख्या १३
११. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या १३
१२. तिवाड़ी, चौधरी एवं चौधरी, "राजस्थान में पंचायत कानून" ऋचा प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या ८-९

[१२]. तिवाड़ी चौधरी एवं चौधरी, पृष्ठ ८-९